

जगदीश राम
बनाम
राजस्थान राज्य और अन्य
9 मार्च, 2004
[वाई.के.सभरवाल और अरिजीत पसायत, जे. जे.]

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955; धारा 7

मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अभियुक्त द्वारा अस्पृश्यता की प्रथा का आरोप लगाते हुए शिकायत- पुलिस ने शिकायत को झूठा पाया और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत किया-दूसरी शिकायत-अदालत ने संज्ञान लिया और आरोपी के खिलाफ समन जारी करने का आदेश दिया-सत्र न्यायालय द्वारा खारिज की गई याचिका को चुनौती-आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 द.प्र.स. के तहत याचिका-उच्च न्यायालय ने आरोपी के खिलाफ समन जारी करने के सवाल का फैसला करने के लिए रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री पर विचार करने के लिए मामले को विचारण न्यायालय में भेज दिया-मजिस्ट्रेट उसी निष्कर्ष पर पहुंचे-आरोपी ने धारा 482 द.प्र.सं. के तहत एक और याचिका दायर की-उच्च न्यायालय द्वारा वापस भेज दिया गया, जिसमें विचारण न्यायालय को उपलब्ध सामग्री के आधार पर उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया-मजिस्ट्रेट अपने पहले के निष्कर्ष पर कायम रहे और आरोपी को तलब करने का निर्देश दिया-फिर भी धारा 482 द.प्र.सं. के तहत दायर एक और याचिका को उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि धारा 482 द.प्र.सं.0 के तहत अन्तर्निहित शक्तियों के लिए मामला नहीं बनता है- निर्धारित: अस्पृश्यता की प्रथा एक गंभीर अपराध है-चूंकि अभियुक्त ने मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों को रद्द करने के लिए हर बार उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, इसलिए मामला संज्ञान लेने के स्तर को पार नहीं कर पाया-अभियुक्त स्वयं देरी के लिए जिम्मेदार है-इसलिए, देरी के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है। भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 17-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 156 (3), 173, 200, 202 और 482।

चतुर्थ श्रेणी के एक कर्मचारी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में जिला आयुर्वेदिक अधिकारी के खिलाफ नागरिक अधिकार अधिनियम की धारा 7 के तहत अपराध करने के लिए शिकायत दर्ज कराई। पुलिस ने मामले की जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि शिकायत झूठी थी और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। कर्मचारी ने एक और शिकायत दर्ज की जिसमें मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला पाया और उसके खिलाफ प्रक्रिया जारी की। अभियुक्त द्वारा आदेश को एक पुनरीक्षण याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी, जिसे सत्र न्यायालय ने खारिज कर दिया था। अभियुक्त ने कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 482 द.प्र.सं. के तहत याचिका दायर की।

846

जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य

847

उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध पूरी सामग्री पर विचार करने के बाद मामले को निपटान के लिए मामला विचारण न्यायालय को भेज दिया। हालाँकि, मजिस्ट्रेट फिर से उसी निष्कर्ष पर पहुँचे। अभियुक्त ने धारा 482 द.प्र.सं. के तहत एक और याचिका दायर की। फिर से, उच्च न्यायालय ने एक उचित आदेश पारित करने के लिए मामले को विचारण न्यायालय में भेज दिया। मजिस्ट्रेट ने तीसरी बार मामले पर विचार किया लेकिन फिर से उसी निष्कर्ष पर पहुँचे और अभियुक्त को तलब किया। अभियुक्त ने धारा 482 द.प्र.सं. के तहत एक और याचिका दायर की, लेकिन इस बार उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए इसे खारिज कर दिया कि उसके द्वारा अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था। इसलिए वर्तमान अपील।

अभियुक्त-अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया कि विचारण न्यायालय ने उसके खिलाफ समन जारी करने का निर्णय लेने से पहले रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री पर विचार नहीं किया; कि वह पिछले 19

वर्षों से आपराधिक मुकदमे का सामना कर रहा था और इसलिए, कार्यवाही देरी के आधार पर रद्द की जानी चाहिए।

याचिका खारिज करते हुए कोर्ट ने कहा,

निर्धारित: 1.1. उच्च न्यायालय ने सही निष्कर्ष निकाला है कि आदेश पारित किया मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में धारा 482 द.प्र.सं. के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में किसी भी हस्तक्षेप का आह्वान नहीं किया जाता है। [851-ई]

1.2. मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेते हुए पारित आदेश सही लिखित आदेश है। आदेश न केवल जाँच के दौरान पुलिस, द्वारा दर्ज किए गए बयानों, जिसके कारण पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गई, और मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 200 और 202 द.प्र.सं के तहत दर्ज किए गए गवाहों के बयान, को संदर्भित करता है बल्कि यह भी स्पष्टता के साथ निर्धारित करता है कि संज्ञान लेने और प्रथम दृष्टया किसी व्यक्ति तक पहुँचने के चरण में किन सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। मजिस्ट्रेट को केवल यह तय करना था कि मामले में आगे की कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है या नहीं। यह अच्छी तरह से तय किया गया है, कि पुलिस की राय के बावजूद, एक मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेने का अधिकार है यदि रिकॉर्ड पर सामग्री उक्त उद्देश्य के लिए एक मामला बनाती है। जांच में अपराध का क्षेत्र विशेष रूप से मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में आता है। मजिस्ट्रेट को संतुष्ट होना होगा कि क्या कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है और यह नहीं कि क्या दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है। क्या साक्ष्य दोषसिद्धि का समर्थन करने के लिए पर्याप्त है, यह केवल विचारण स्तर पर निर्धारित किया जा सकता है न कि जांच के स्तर पर। प्रक्रिया जारी करने के चरण में अभियुक्त के लिए, मजिस्ट्रेट को कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। [851-ए-डी] *आयात और निर्यात के डिप्टी मुख्य नियंत्रक बनाम रोशनलाल अग्रवाल और अन्य*[2003] 4 एस.सी.सी. 139, पर भरोसा किया।

848 सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट [2004] 2 एस सी आर

2.1 . यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने हर बार जब कोई आदेश दिया जाता है तो लगातार उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जाता है मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान पारित किया गया। यह उनके कारण है कि मजिस्ट्रेट के समक्ष आपराधिक कार्यवाही संज्ञान लेने के स्तर को पार नहीं कर पाई। जब तीसरी बार वह उच्च न्यायालय के समक्ष सफल नहीं हुए, तो उन्होंने इस अदालत का दरवाजा खटखटाया और उनके कहने पर निचली अदालत की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई। अतः अभियुक्त के कारण मामला आगे नहीं बढ़ा है। यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि उसे अब आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के आधार के रूप में देरी का आग्रह करने की अनुमति दी जाती है। [851 - एच; 852-ए-सी]

एस. जी. नैन बनाम भारत संघ, [1995] सप 4 एससीसी 552; *बिहार राज्य बनाम विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम नंद किशोर तमाखुवाला*, [1986] 2 एस.सी.सी. 414 और *रामानंद चौधरी बनाम बिहार राज्य और अन्य*[2002] 1 एस.सी.सी.153, विशिष्ट।

2.2. इस सवाल पर विचार करते हुए कि क्या आपराधिक कार्यवाही को विलम्ब के आधार पर निरस्त किए जाना उचित है, विलंब का कारण और अपराध की गंभीरता पर भी विचार किया जाना चाहिए। देरी के कारणों के बारे में, आरोपी देरी के लिए जिम्मेदार था। अपराध की गंभीरता के संबंध में, यह देखा गया है कि संविधान के तहत अस्पृश्यता की बुराई को समाप्त कर दिया गया था और जिस अधिनियम के तहत शिकायत दर्ज की गई है, वह लगभग आधी सदी पहले अधिनियमित किया गया था। इसलिए, देरी के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का कोई मामला नहीं बनाया गया है।

[852 - सी-ई]

आपराधिक अपील न्यायनिर्णय: आपराधिक अपील स 0 357 सन् 1997।

राजस्थान उच्च न्यायालय के एस 0 बी 0 क्रिमीनल एम 0 पी 0 नम्बर 66 सन् 1995 में पारित आदेश एवं निर्णय 4.7.96

अपीलार्थी की ओर से सुशील कुमार जैन, एच. डी. थारवी और शरद सिंघानिया।

उत्तरदाताओं के लिए सुश्री संध्या गोस्वामी।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

वाई.के. सभरवाल, जे. यह मामला एक घटना जो 1985 में हुई थी से संबंधित है। मजिस्ट्रेट के समक्ष आपराधिक कार्यवाही संज्ञान लेने के स्टेज को पार नहीं कर पाई है। इस अपील में उस आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने हेतु आग्रह किया गया जो 19 साल से लम्बित है।

जगदीश राम बनाम राजस्थान राज्य

849

अपीलार्थी जिला आयुर्वेदिक अधिकारी हैं। शिकायतकर्ता आयुर्वेदिक औषधालय, फतेहगढ़ में एक चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी है। शिकायतकर्ता के अनुसार 7 नवंबर, 1985 को जब अपीलार्थी ने उक्त स्थान का दौरा किया तो कई मरीज मौजूद थे। अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता से पानी लाने को कहा। जब शिकायतकर्ता पानी लाय, तो अपीलार्थी ने उसका अपमान किया, जिसने उससे कहा, “मैं आपके हाथों से पानी पीकर अपना धर्म खराब नहीं करना चाहता। आपने पानी देने की हिम्मत कैसे की” और उसे गाली देना शुरू कर दिया। शिकायतकर्ता ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में धारा 7 नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (इसके बाद “अधिनियम” के रूप में संदर्भित)के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज कराई है।

अनुच्छेद 17 भारत के संविधान, द्वारा किसी भी रूप में अस्पृश्यता की प्रथा को निषिद्ध किया गया है। जो अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करता है कि “अस्पृश्यता” को समाप्त कर दिया गया है, “अस्पृश्यता” से उत्पन्न होने वाली किसी भी अक्षमता को लागू करना कानून के अनुसार दंडनीय अपराध होगा। संविधान के अधिदेश का पालन करने के लिए, अधिनियम को अन्य बातों के साथ-साथ “अस्पृश्यता” के उपदेश और अभ्यास के लिए दंड निर्धारित करने की दृष्टि से और उससे उत्पन्न होने वाली अक्षमता का प्रवर्तन और उससे जुड़े मामलों के लिए अधिनियमित किया गया है।

उपरोक्त शिकायत धारा 156 (3) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित) के तहत पुलिस को अन्वेषण के लिए भेजी गई थी। मामला दर्ज कर अन्वेषण की गई। अन्वेषण अधिकारी ने शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों से पूछताछ की और कुछ दस्तावेजों की प्रतियाँ भी प्राप्त कीं। अन्वेषण पूरी करने के बाद पुलिस ने संहिता की धारा 173 के तहत एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया था कि शिकायत झूठी थी और वास्तव में 7 नवंबर को शिकायतकर्ता झूठी से अनुपस्थित पाया गया था और इसलिए, उसे आधे दिन के लिए आकस्मिक छुट्टी लेने के लिए कहा गया था और इस कारण से उसके द्वारा एक झूठी शिकायत दर्ज की गई थी।

पुलिस द्वारा उक्त अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद शिकायतकर्ता ने एक और शिकायत दर्ज कराई। घटना के समय उपस्थित गवाहों के बयानों की अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा अन्वेषण की गई, जिन्होंने 26 जून, 1986 के आदेश द्वारा प्रथम दृष्टया मामला पाया, संज्ञान लिया और अपीलार्थी के खिलाफ प्रक्रिया जारी की। प्रक्रिया जारी करने के आदेश को अपीलार्थी ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष दायर एक पुनरीक्षण याचिका में चुनौती दी थी जिसे खारिज कर दिया गया था। संहिता की धारा 482 के तहत दायर एक याचिका पर, सत्र न्यायाधीश के साथ-साथ अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के

850 सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2004]2 एस.सी.आर.

आदेशों को उच्च न्यायालय द्वारा 26 मई, 1988 के फैसले द्वारा खारिज कर दिया गया था और फैसले में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए कानून के अनुसार आगे बढ़ने के लिए मामले को विचारण न्यायालय में भेज दिया गया था। उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ यह भी कहा कि विचारण न्यायालय को यह तय करने से पहले रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरी सामग्री पर विचार करना चाहिए कि आरोपी के खिलाफ प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए या नहीं।

रिमांड के बाद, अभिलेख पर सामग्री पर विचार करने पर, मजिस्ट्रेट फिर से उसी निष्कर्ष पर पहुंचे और 22 जनवरी, 1990 के आदेश द्वारा संज्ञान लिया। इसके कारण अपीलार्थी द्वारा संहिता की धारा 482 के तहत एक और याचिका दायर की गई। पुनः उच्च न्यायालय ने 27 मई, 1994 के निर्णय द्वारा 22 जनवरी, 1990 के आदेश को यह देखते हुए दरकिनार कर दिया कि यदि अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट अंतिम रिपोर्ट से असहमत थे तो इसे स्वीकार नहीं करने के लिए कुछ कारण दिए जाने चाहिए थे और इस बार भी मामले को मजिस्ट्रेट को रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने और उसके बाद यह तय करने के लिए उचित आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए या नहीं।

इस अपील में हम उच्च न्यायालय के दिनांक 26 मई, 1988 या 27 मई, 1994 को किये गये निर्णयों की शुद्धता में नहीं जा रहे हैं। इन निर्णयों को अंतिम रूप मिल गया है। यह कहने के लिए पर्याप्त आधार है कि उच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार, मजिस्ट्रेट ने तीसरी बार मामले पर फिर से विचार किया। पुनः, 16 दिसंबर, 1994 के आदेश द्वारा मजिस्ट्रेट उसी निष्कर्ष पर पहुंचे जो पहले दो मौकों पर पहुंचा था और अपीलार्थी के खिलाफ अधिनियम की धारा 7 के तहत अपराध का संज्ञान लिया और निर्देश दिया कि अपीलार्थी को तलब किया जाए।

संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष संज्ञान आदेश को चुनौती देने हेतु यह एक तीसरी याचिका थी। इस बार अपीलार्थी भाग्यशाली नहीं था। उच्च न्यायालय ने 4 मई, 1996 के विवादित फैसले द्वारा इस तर्क को खारिज कर दिया कि अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री पर विचार किए बिना आदेश पारित किया। उच्च न्यायालय ने कहा कि संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने का कोई मामला नहीं बनता है।

उच्च न्यायालय के फैसले को चुनौती देते हुए, अपीलकर्ता इस न्यायालय के समक्ष अनुमति के माध्यम से अपील में है। इस अदालत ने अपील के फैसले तक मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगा दी थी।

आग्रह किया गया तर्क यह है कि हालांकि निचली अदालत को निर्देश दिया गया था कि अपीलार्थी के खिलाफ प्रक्रिया जारी की जानी चाहिए या नहीं, यह तय करने से पहले अंतिम रिपोर्ट सहित रिकॉर्ड पर पूरी सामग्री पर विचार करें, फिर भी संपूर्ण सामग्री पर विचार नहीं किया गया था। मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के अवलोकन से यह नहीं कहा जा सकता है कि पूरी सामग्री को ध्यान में नहीं रखा गया था। मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेते हुए पारित आदेश एक अच्छी तरह से लिखित आदेश है। आदेश न केवल जांच के दौरान पुलिस द्वारा दर्ज किए गए बयानों को संदर्भित करता है, जिसके कारण पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट दायर की गई और मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज किए गए गवाहों के बयानों को भी स्पष्ट रूप से संदर्भित करता है, बल्कि संज्ञान लेने और प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण तक पहुंचने के चरण में ध्यान में रखने के लिए आवश्यक सिद्धांतों को भी स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है। इस स्तर पर, मजिस्ट्रेट को केवल यह तय करना था कि मामले में आगे की कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है या नहीं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि पुलिस की राय के बावजूद, एक मजिस्ट्रेट को संज्ञान लेने का अधिकार है यदि रिकॉर्ड पर सामग्री से उक्त उद्देश्य के लिए एक मामला बनता हो। जांच पुलिस का अनन्य क्षेत्र है। अपराध का संज्ञान लेना एक ऐसा क्षेत्र है जो विशेष रूप से मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में आता है। इस स्तर पर, मजिस्ट्रेट को संतुष्ट होना पड़ता है कि क्या कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है और न कि क्या दोषसिद्ध के लिए पर्याप्त आधार है कि क्या साक्ष्य दोषसिद्धि का समर्थन करने के लिए पर्याप्त है, यह केवल मुकदमे में निर्धारित किया जा सकता है न कि जांच के चरण में। अभियुक्त को समन जारी करने के चरण में, मजिस्ट्रेट को कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं होती है। (आयात और निर्यात के डिप्टी मुख्य नियंत्रक बनाम रोशनलाल अग्रवाल और अन्य [2003] 4 एस.सी.सी. 139)

उच्च न्यायालय ने सही निष्कर्ष निकाला है कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में किसी भी हस्तक्षेप का आह्वान नहीं करता है।

श्री जैन ने आदेश को रद्द करने के लिए एक अतिरिक्त आधार प्रस्तुत किया। विद्वान वकील का तर्क है कि अपीलार्थी पिछले 19 वर्षों से आपराधिक कार्यवाही का सामना कर रहा है और इसलिए, कार्यवाही देरी के आधार पर रद्द की जानी चाहिए। एस. जी. नैन बनाम भारत संघ, [1995] 4 एस.सी.सी. 552, बिहार राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम नंद किशोर तमाखुवाला, [1986] 2 एस.सी.सी. 414 और रामानंद चौधरी बनाम बिहार राज्य और अन्य, [2002] 1 एससीसी 153 को समर्थन प्रस्तुत किया गया है। इन मामलों में, आपराधिक कार्यवाही को उसमें शामिल विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए रद्द कर दिया गया था, जिसमें इस न्यायालय के अभियुक्त के खिलाफ किये गए मामले के बारे में कुछ संदेह भी शामिल थे। इनमें से किसी भी निर्णय में कोई बाध्यकारी सिद्धांत

852

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

[2004] 2 एस.सी.आर.

निर्धारित नहीं किया गया है कि आपराधिक कार्यवाही को बिना देरी के कारणों को जाने बिना, रद्द किया जाना चाहिए।

यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अपीलार्थी द्वारा क्रमिक रूप से मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लेने का आदेश पारित किए जाने पर हर बार उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जाता रहा है। यह अपीलार्थी के कारण है कि आपराधिक कार्यवाही मजिस्ट्रेट के समक्ष संज्ञान लेने के स्तर को पार नहीं कर पाई। जैसा कि पहले देखा गया है, चूंकि उच्च न्यायालय के पहले के निर्णयों ने अंतिमता प्राप्त कर ली है, इसलिए हम इन निर्णयों की शुद्धता में नहीं जा रहे हैं। जब तीसरी बार अपीलकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष सफल नहीं हुआ, तो उसने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और उसके कहने पर विचारण न्यायालय की कार्यवाही पर रोक लगा दी गई। वास्तव में, 1986 से आज तक अपीलार्थी के कारण आपराधिक मामला आगे नहीं बढ़ा है। यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा यदि अपीलार्थी को अब आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए एक आधार के रूप में देरी का आग्रह करने की अनुमति दी जाती है। इस सवाल पर विचार करते हुए कि क्या आपराधिक कार्यवाही को देरी के आधार पर रद्द किया जाना चाहिए, पहला सवाल जिस पर गौर किया जाना चाहिए वह है देरी का कारण और अपराध की गंभीरता। देरी के कारणों के बारे में, अपीलार्थी को स्वयं को धन्यवाद देना होगा। वह देरी के लिए जिम्मेदार है। अपराध की गंभीरता के संबंध में, हम देख सकते हैं कि संविधान के तहत अस्पृश्यता की बुराई को समाप्त कर दिया गया था और जिस अधिनियम के तहत विचाराधीन शिकायत दर्ज की गई है, वह लगभग आधी सदी पहले अधिनियमित किया गया था। यह दलील कि शिकायत शिकायतकर्ता की प्रतिशोध के परिणामस्वरूप दर्ज की गई थी, इस स्तर पर प्रासंगिक नहीं है। अपीलार्थी के पास उचित स्तर पर निचली अदालत के समक्ष अपने लिए उपलब्ध सभी याचिकाओं को उठाने का पर्याप्त अवसर होगा। देरी के आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है।

भारी देरी को ध्यान में रखते हुए, हम विचारण न्यायालय को विचारण में तेजी लाने तथा 6 महीने के भीतर मामले का निपटारा करने का निर्देश देते हैं उपरोक्त कारणों से, अपील खारिज कर दी जाती है।

एस 0 के 0 एस 0

याचिका खारिज

प्रमाणित किया जाता है कि यह मेरे (जैनब,सिविल जज, गरूड, जिला बागेश्वर) स्वयं द्वारा निर्णयों की शब्द दर शब्द की गयी जांच/सत्यापन हैं।